

व्यवहारचारित्र के अधिकार में निश्चयशरीर की गुप्ति की व्याख्या है। कायोत्सर्ग  
कैसे कहना? ७० वीं गाथा।

कायकिरियाणियत्ती काउस्सगो सरीरगे गुत्ती।

हिंसाइ-णियत्ती वा सरीर-गुत्ति त्ति णिद्धिटा ॥७०॥

नीचे इसका हरिगीत

कायिक क्रिया निवृत्ति कायोत्सर्ग तन की गुप्ति है।

हिंसादि से निवृत्ति भी होती नियत तनगुप्ति है ॥७०॥

टीका : यह निश्चयशरीरगुप्ति के स्वरूप का कथन है। सर्वजनों को  
कायासम्बन्धी बहु क्रियाएँ होती हैं;... यह देह / शरीर जड़ है, उस सम्बन्धी की बहुत  
प्रवृत्ति शरीर में शरीर के कारण होती है। उनकी निवृत्ति,... उस शरीर की क्रिया की ओर  
के राग के विकल्प का झुकाव जो है, उससे निवृत्ति, वह शरीर की क्रिया से निवृत्ति, ऐसा  
कहा जाता है। सर्वजनों को... यह शरीर है, वह तो जड़ है, अजीव है। इसकी जो बहुत  
प्रकार की क्रियाएँ उनकी निवृत्ति, सो कायोत्सर्ग है;... अर्थात् अन्दर में शुभ-अशुभराग

हो, राग, उससे भी निवृत्ति करके स्वरूप में एकाग्र होना, इसका नाम शरीरगुप्ति अथवा कायोत्सर्ग कहा जाता है।

काया का उत्सर्ग अर्थात् आत्मा में शरीर है नहीं और शरीर की क्रिया की ओर के झुकाववाला भाग भी आत्मा में नहीं है। ऐसा जो शुभ-अशुभराग / विकल्प, काया की क्रिया के सम्बन्ध में हो वह, उससे निवृत्ति करके अखण्ड आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द में एकाग्र होना, उसका नाम सच्चा कायोत्सर्ग कहते हैं। तस्सउत्तरी में आता है न? ताव कायं ठाणेणं माणेणं ज्ञाणेणं अप्पाणं वोसिरामी। काया की ओर का झुकाव छोड़ता हूँ। वचन का और ध्यान में मन का। ठाणेणां, माणेणं, ज्ञाणेणं – ऐसे तीन हैं न? काया, मन और वाणी, तीनों से मैं छूटता हूँ। कायोत्सर्ग आता है न? तस्सउत्तरी! ऐई! बाबूभाई! अर्थ भी नहीं आता होगा। ऐसे के ऐसे पहाड़े बोलते हों। उसमें चौथे पाठ में आता है। ताव कायं ठाणेणं माणेणं ज्ञाणेणं अप्पाणं वोसिरामी।

यहाँ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थकरदेव कहते हैं कि कायोत्सर्ग तो उसे कहते हैं, कि जो आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है, उसमें लीन होकर काया की क्रियाओं सम्बन्धी के विकल्प की वृत्तियों का अभाव करके स्वरूप में स्थिर होना, आनन्द का वेदन करना, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करना, इसका नाम कायोत्सर्ग है।

**मुमुक्षु :** अन्दर के आनन्द में...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आनन्द के अतिरिक्त क्या करता है, वह भाव आनन्द का है। यह दुःख का है। कायासम्बन्धी, क्रियासम्बन्धी का विकल्प है, वह सब दुःख है। शुभ-अशुभ राग की वृत्ति, विकल्प उठे-कायासम्बन्धी, मनसम्बन्धी या वचनसम्बन्धी, वह दुःख है। धर्म कहीं दुःखरूप होगा? यह दुःख के विकल्प जो राग, उससे निवृत्ति अर्थात् स्वरूप में प्रवृत्ति, ऐसा। स्वरूप आनन्द... अभी आगे कहेंगे।

उनकी निवृत्ति, सो कायोत्सर्ग है; वही गुप्ति ( अर्थात् कायगुप्ति ) है। उसे भगवान गुप्ति कहते हैं। आहाहा! स्वरूप में अन्दर में जाना और विकल्पों का नाश होना, उसका नाम परमात्मा कायोत्सर्ग की गुप्ति कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह कायोत्सर्गरूपी गुप्ति है। अथवा पाँच स्थावरों की और त्रसों की हिंसानिवृत्ति, सो कायगुप्ति है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस (ये) छह काय है न? पाँच स्थावर और त्रस, उनके ओर

की हिंसा की निवृत्ति का नाम कायगुप्ति है। पर की ओर के झुकाव का हिंसा का भाव, उससे छूटना और अन्तरस्वभाव आत्मा का, उसमें एकाग्र होना, इसका नाम कायगुप्ति कहा जाता है।

**जो परमसंयमधर...** मुनि की मुख्यता से बात ली है न? **जो परमसंयमधर...** परम आत्मा के आनन्द में जिसे संयमदशा प्रगट हुई है, उसे मुनि कहते हैं। जिन्हें विकल्प से छह काय की हिंसा छूट गयी है, तथा अव्रत का भाव भी जिन्हें छूट गया है। आत्मा के अतीन्द्रिय निजस्वरूप में जो परम योगीश्वर स्थित हैं। **परमसंयमधर...** हैं ऐसे **परमजिनयोगीश्वर...** आहाहा! परमजिनयोगीश्वर। जिनयोगीश्वर अर्थात् जिन्होंने राग के विकल्प को जीता है, उत्पन्न होने नहीं देते। वीतरागभावना उत्पन्न करते हैं, उन्हें परमजिनयोगीश्वर, उन्हें सन्त-मुनि कहा जाता है।

**परमसंयमधर परमजिनयोगीश्वर अपने (चैतन्यरूप) शरीर में अपने (चैतन्यरूप) शरीर से प्रविष्ट हो गये,...** देखो! आहाहा! कहते हैं कि यह शरीर की गुप्ति की व्याख्या चलती है न? तो यह शरीर है, वह तो अजीव-जड़ है। उस ओर की प्रवृत्ति का विकल्प है, वह भी विकार है। उससे आत्मा में प्रवेश नहीं होता, परन्तु उस विकल्प की, विकार की वृत्तियों से रहित शुद्धचैतन्यस्वरूप आत्मा, ऐसा जो अपना निजशरीर। शरीरगुप्ति है न? इसलिए यहाँ शरीर लिया। इस शरीर की प्रवृत्ति के विकल्प-राग से छूटकर और निजशरीर... वीतरागस्वभावस्वरूप आत्मा, वह निजशरीर है। आहाहा! निजशरीर में अपने शरीर से अर्थात् चैतन्यरूप शरीर से प्रवेश कर गये हैं। क्या कहते हैं? पुण्य-पाप का शुभ-अशुभ विकल्प है, वह तो विकार है, वह कोई आत्मा नहीं। आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, ऐसा अपना स्वरूप, वह अपना शरीर, उसमें चैतन्यरूप शरीर से-निर्मल वीतरागी परिणति से प्रवेश कर गये हैं। भाषा भी समझना कठिन पड़े। ऐसा हो, उसकी अपेक्षा एक जात्रा-वात्रा कर आवें और कल्याण हो गया, जाओ। आहाहा! कल्याण पूरी चीज़ अलग है। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव, परमजिनयोगीश्वर सन्तों की गुप्ति का वर्णन करते हैं। आहाहा! यह शरीर जड़-मिट्टी है, इसकी क्रियाओं से निवृत्त हुआ हो, इसलिए उस ओर के झुकाववाला विकल्प, उससे निवृत्त हुआ; इसलिए शरीर की क्रिया से निवृत्त हुआ,

ऐसा कहने में आता है। वहाँ से निवृत्त हुआ, तब अब गया कहाँ? कि भगवान ज्ञानस्वरूप -आनन्दस्वरूप आत्मा, उसने निर्मल वीतरागी परिणति से अन्दर में प्रवेश किया। आहाहा! यह बात! ऐसा प्रभु का मार्ग है, भाई! आहाहा! दुनिया कुछ की कुछ माने, मार्ग कहीं रह गया।

त्रिलोकनाथ परमात्मा, इन्द्रों और नरेन्द्रों के समक्ष इस शरीर की गुप्ति का वर्णन करते थे। आहा! भाई! यह शरीर है, वह तो मिट्टी-जड़ है। उसकी प्रवृत्ति की क्रिया तो जड़ से जड़ में है परन्तु तुझे विकल्प था कि मैं शरीर का ऐसा करूँ, ऐसा करूँ - ऐसा जो पुण्य-पाप का जो विकल्प है, वह भी वास्तव में तो काया है, पर काया है। आहाहा! वह आस्रव-तत्त्व है, वह पर काया है अर्थात् वह पर का समूह है, वह चैतन्य नहीं। आहाहा!

चैतन्य तो आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु! ऐसे चैतन्य में चैतन्य द्वारा, स्वशरीर में स्वशरीर द्वारा। स्वशरीर अर्थात् चैतन्य ज्ञानमूर्ति में ज्ञान और वीतराग की वीतरागी शुद्ध परिणति द्वारा चैतन्य के द्रव्य में प्रवेश किया, उसका नाम कायोत्सर्ग कहा जाता है। बाबूभाई! बाप-दादा ने किसी ने कभी सुना भी नहीं होगा। यह कर डाली सामायिक। यह तो अब कभी सुनने आते हैं, इनके पिता तो सुनते ही नहीं। पुरानी रूढ़ि। क्यों चिमनभाई! ऐसा ही है न। प्रत्येक में वह जहाँ-जहाँ पड़ा हो... आहाहा! पारसनाथ परचा पूरे। ऐसा हमारे बारम्बार बोलते। पिताजी दातून करके... इतना बोलते।

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस, इतना समझे। पारसनाथ परचा पूरे, शान्तिनाथ साता करे। उन्हें कुछ दूसरी खबर नहीं। भोले व्यक्ति हैं। भोले अर्थात् धर्म के लिए भोले, हों! संसार में तो... पारसनाथ परचा पूरे, शान्तिनाथ साता करे - ऐसा बोलते अवश्य दो-तीन लाइन। आहाहा! यह पारसनाथ तो तू है। आनन्द का धाम सच्चिदानन्द प्रभु ऐसा जो आत्मा, उसमें निर्मल परिणति द्वारा प्रवेश करना अर्थात् अभेद होना। आहाहा! क्या कहते हैं, यह अभी पकड़ना कठिन। शान्तिभाई! आहाहा! इसका नाम कायोत्सर्ग और इसका नाम शरीर की गुप्ति। इस शरीर की ओर के लक्ष्य को छोड़कर, चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, आनन्द का धाम आत्मा है, उसमें निर्मल वीतरागी पर्याय द्वारा अन्तर में प्रवेश करना, इसका नाम कायोत्सर्ग कहते हैं। कायोत्सर्ग कभी किया तो नहीं, परन्तु कायोत्सर्ग कैसे हो, इसकी

खबर भी नहीं। आहाहा! ऐसे का ऐसे मान बैठे। भगवान के सामने खड़ा रहे। 'ताऊ काये ठाठणं' भगवान के दर्शन करने सामने खड़े रहते हैं न? वह तो सब शुभराग है, वह तो विकल्प है, पुण्यभाव है; वह धर्म नहीं, वह कायोत्सर्ग नहीं। आहाहा!

कायोत्सर्ग तो उसे कहते हैं कि जो कायासम्बन्धी की वृत्तियों को छोड़कर-उत्सर्ग, उनका उत्सर्ग किया - छोड़ा। उसे छोड़ा, तब गया कहाँ? ऐसा कहते हैं। इसलिए ऐसा अर्थ किया। कायोत्सर्ग है न, इसलिए उसमें यह बात की। मन की वाणी-देह की जो विकल्पदशा राग है, उससे निवृत्त हुआ। निवृत्त हुआ, तब गया कहाँ? कि आनन्दस्वरूप जो आत्मा चैतन्यमूर्ति प्रभु (है), उसे निर्मल परिणति द्वारा अन्तर में अभेद हुआ, इसका नाम कायोत्सर्ग कहने में आता है। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐसा सुने, गुणवन्तभाई! बाहर में तो सुनने में आता नहीं। बस ऐसा करो, सामायिक करो, इच्छामि पडिक्कमियू ईरिया वहियाये। लो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं। क्या कहा? यह भाषा जड़ है। इसमें विकल्प हुआ, वह राग है। कोई खबर नहीं होती। अनन्त काल ऐसा का ऐसा वास्तविक तत्त्व के भान बिना व्यतीत किया और चौरासी के अवतार में गल गया। कैसी बात की? देखो! आहाहा!

इस शरीर के प्रति लक्ष्य छोड़कर... शरीर तो शरीर है, वह तो जड़ की क्रिया है। वह कहीं तुझसे नहीं छूटता और तुझसे होता भी नहीं परन्तु यहाँ उसकी ओर का लक्ष्य छोड़ा तो शरीर की क्रिया छोड़ी, ऐसा कहने में आया। उसकी ओर का लक्ष्य छोड़ा, तब उसका अर्थ हुआ कि पुण्य और पाप के विकल्प से भी लक्ष्य छोड़ा और उनसे लक्ष्य छोड़ा, तब गया कहाँ? प्रवेश कहाँ किया? राग में प्रवेश था, शुभ-अशुभ राग में प्रवेश था, वह तो अकायोत्सर्ग था-मिथ्यात्वभाव था। राग में एकाकार, वह तो मिथ्यात्वभाव था। सम्यक्भाव? भगवान चैतन्यशरीर स्व इसकी वस्तु है। ज्ञान, आनन्द, जाननस्वभाव ऐसा जो चैतन्य का निज, अनादि शरीर अर्थात् स्वरूप, उसमें निज शरीर से और निज स्वरूप से। निज स्वरूप से प्रवेश करे, इसका नाम कायोत्सर्ग है। आहाहा! जैन के वाड़ा में जन्मे हों, तथापि यह बात क्या है, वह सुनी नहीं होगी। बालचन्द्रभाई! वृद्ध ने सुनी थी? आहाहा!

तीर्थकर त्रिलोकनाथ, इन्द्र के पूजनीक, पूर्णानन्दस्वरूप प्राप्त, उनकी वाणी में आया, वह बात सन्त कहते हैं। पाठ में है न? 'स्वकीयं वपुः स्वस्य वपुषा विवेश' 'स्वकीयं

वपुः' संस्कृत है। 'स्वकीयं वपुः' अपना जो 'वपुः' अर्थात् शरीर। आनन्द और ज्ञान का धाम आत्मा, वह इसका शरीर। आहाहा! उसे यह (जड़) शरीर नहीं, यह तो मिट्टी जड़ है। पुण्य-पाप के विकल्प / भाव उठें, वह भी विकार है, अचेतन है। वह कहीं चैतन्य की जाति नहीं है। उस विकार के पुण्य-पाप के राग से रहित चैतन्य ज्योति भगवान आत्मा वस्तु पदार्थ है, सत्त्व है, तत्त्व है, वस्तु है, ऐसा निज स्वकीय शरीर, ज्ञान और आनन्द का सागर, ऐसा स्वकीय शरीर, उसमें 'स्वकीयं वपुः स्वस्य वपुषा' संस्कृत में है न? आहाहा! गजब टीका करते हैं। यह कठिन पड़े, इसलिए वे लोग निकाल डालते हैं। अपूर्व बात है। बाबूभाई! अपूर्व कहते थे न कल? बात तो ऐसी है। यह तो वीतराग की है। यह बात अन्यत्र कहीं तीन काल में सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर के अतिरिक्त ऐसा स्वरूप कहीं नहीं हो सकता। आहाहा! देखो पद्धति!

शरीर की गुप्ति अर्थात् शरीर की ओर के राग के पुण्य-पाप के भाव को छोड़कर इसने काया की क्रियाएँ छोड़ी, ऐसा कहने में आता है। तब ग्रहण क्या किया? कि चैतन्य भगवान आत्मा अन्तर आनन्द और ज्ञान का सागर प्रभु है, ऐसा निज स्वशरीर अर्थात् स्वस्वरूप, उस स्वस्वरूप द्वारा प्रवेश किया। निर्मल दशा द्वारा अन्दर एकाकार हुआ। आहाहा! उस पुण्य के विकल्प से भी अन्तर एकाकार नहीं हुआ जाता। उससे तो निवृत्त हो, तब यहाँ प्रवेश होता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? पहले समझ तो करे। सत्य क्या है? प्रभु का मार्ग क्या है? वीतराग क्या कहना चाहते हैं। खबर नहीं होती और ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। शरीर मृत्यु के समीप होता जाता है। जो अवधि लेकर आया है, उसके निकट होता जाता है। है या नहीं? आहाहा!

यह जीवती ज्योति चैतन्य है। आहाहा! ज्ञान और शान्ति, आनन्द और स्वच्छता, प्रभुता से भरपूर प्रभु! ऐसा इसका स्वस्वरूप कहो या स्वशरीर कहो। उसे राग से विमुख करके और रागरहित निर्मल पर्याय / निर्मलदशा द्वारा निर्मलानन्द प्रभु को पकड़ना, उसमें प्रवेश करना, उसका नाम शरीरगुप्ति और कायोत्सर्ग है। आहाहा! यह निवृत्ति का अर्थ है। उस ओर का लक्ष्य छोड़ना अर्थात् कि यहाँ निवृत्ति हो गयी। यहाँ निवृत्ति है, वहाँ कहाँ उसमें घुस गयी है? वह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। शरीर से ऐसा करना, ऐसा राग है, उसे और उस क्रिया को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध को छोड़ा, उसने काया की

क्रिया को छोड़ा, निवृत्ति (हुई), ऐसा कहने में आता है। क्या हो? भाषा में कहना हो तो उसकी पद्धति अनुसार भाषा में आवे। पाठ में है न 'कायकिरियाणियत्ती।'

भगवान आत्मा... आहाहा! परन्तु कौन है, इसकी खबर बिना अन्दर स्थिर कहाँ से हो? अन्दर जाए कहाँ से? यह चीज़ है कौन? मैं आत्मा... आत्मा... आत्मा कहलाता है। वह कोई वस्तु है या उसमें क्या है? क्या है वह? जैसे ये जड़ादि वस्तु है, वैसे ही भगवान आत्मा भी वस्तु है और जैसे जड़ में जड़ की शक्तियाँ हैं, वैसे भगवान आत्मा में उसकी अरूपी चैतन्य अनन्त शक्तियाँ हैं। ऐसी अनन्त शक्ति का स्वरूप एकरूप भगवान में निर्मल दशा द्वारा अन्दर में जाना, उसे कायोत्सर्ग और उसे योग तथा उसे गुप्ति कहा जाता है। इसका नाम धर्म है। आहाहा!

श्रीमद् कहते हैं न कि अप्पाणं बोसरामि। पूरा आत्मा छोड़ दे। तारु काय ठाणेणं, माणेणं, ज्ञाणेणं, अप्पाणं बोसरामि। यह कौन सा आत्मा छोड़ना है और किस आत्मा को ग्रहण करना है, इसकी कुछ खबर नहीं। अप्पाणं बोसरामि, श्रीमद् कहते हैं। आत्मा को छोड़ दिया, परन्तु कौन सा आत्मा? क्या कहता है तू? यह पुण्य और पाप की वृत्तियाँ हैं, वे अनात्मा हैं, वे यथार्थ आत्मा नहीं। उन्हें छोड़ना, उन्हें छोड़ा और आत्मा त्रिकाल आनन्द स्वरूप है, उसे पकड़ा। आहाहा! कहो, मोहनभाई! आता है न? अप्पाणं बोसरामि। श्रीमद् ने टीका की है। बोलनेवाले को भान नहीं होता कि मैं अप्पाणं बोसरामि—आत्मा को छोड़ूँ परन्तु किस आत्मा को छोड़ूँ और किस आत्मा को ग्रहण करूँ? हिम्मतभाई! आता है न? पाठ कण्ठस्थ किया है? नहीं किया? कपूरभाई ने किया होगा। पहले के पुराने वृद्ध हों, उन्होंने (किया होगा)। तुमने नहीं किया होगा अरविन्दभाई? किया है? आहाहा!

कहते हैं कि अप्पाणं बोसरामि का अर्थ क्या? - कि काया, मन और वाणी की ओर के पुण्य-पाप के विकल्प जो राग, वह अशुद्ध आत्मा, वह व्यवहार आत्मा, वह विकार आत्मा; उसे मैं छोड़ता हूँ। परन्तु क्या बराबर? अभी तक कभी ध्यान रखा है? उस व्यापार में अन्दर कितने लवलीन हो जाए। शरीर अच्छा न हो तो भी वहाँ जाए।

**मुमुक्षु :** उसमें समझ पड़ती है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें समझ पड़ती है। शरीर को ठीक नहीं था न, कितने ही

महीने; तो भी झट अच्छा हो जाए तो काम में जाएँ। झट हो जाए। ऐसे साधारण रीति से लोगों को होता है कि शीघ्र मिट जाए, फिर दुकान में घाणी के बैल की तरह मजदूरी में जुड़ जाएँ। आहाहा! बात तो यहाँ विशिष्टता यह की है।

शरीर में अपने ( चैतन्यरूप ) शरीर से प्रविष्ट हो गये,... धर्मात्मा का कायोत्सर्ग काल ऐसा है कि... आहाहा! भगवान आत्मा... इस शरीर से छूटा, तब निज शरीर क्या? कि ज्ञान आनन्द, शान्ति, स्वच्छता का धाम प्रभु अन्दर आत्मा है। सिद्ध भगवान को जो दशाएँ प्रगट हुई, वे सब दशाएँ आत्मा में भरी हैं। आहाहा! वे दशाएँ आयी कहाँ से? कहीं बाहर से आती है? सिद्ध भगवान, अरिहन्त भगवान को जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया? कोई देह में से आता है? वाणी में से, मन में से, राग में से वह दशा आती है? आहाहा! एक समय की पर्याय में से आती है? पर्याय तो एक समय की है। वस्तु है ध्रुव, चैतन्य भगवान। अनन्त ऐसी निर्मल पर्याय का पिण्ड है, उसे यहाँ निर्मल पर्याय द्वारा अन्दर पर्यायवान को पहुँच जाना। आहाहा! कितनों ने तो ऐसे शब्द भी पूरी जिन्दगी में सुने नहीं होंगे। क्यों भाई! मूलचन्दजी! सत्य बात है? ऐसी स्थिति है, बापू! आहाहा! यह जन्म-जरा और मरण का अन्त लाने की बातें हैं, बापू! जन्म-मरण तो अनादि से कर रहा है। ये धूल के सेठ, ये देव, वे सब बेचारे दुःखी हैं। ऐसा होगा? बालचन्दभाई! मलूपचन्दभाई! दुःखी होंगे ये? पूनमचन्द दुःखी होगा? आहाहा!

यहाँ तो परसन्मुख के झुकाव का विकार, वह दुःख और वह आकुलता है। आहाहा! उसे छोड़कर अर्थात् उस ओर का आश्रय तथा झुकाव छोड़कर, यहाँ भगवान चैतन्य द्रव्यस्वरूप में निर्मल दशा... यहाँ राग से छूटा तो निर्मलदशा हुई। उस निर्मल दशा द्वारा अन्दर में गया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! यह कायोत्सर्ग की व्याख्या है। वे तो सामने खड़े रहें (और बोले) काऊ ठाय झाणेण, माणेणं णमो अरिहन्ताणं - लो हो गया दो मिनिट में कायोत्सर्ग। आहाहा! बापू! एक सेकेण्ड का कायोत्सर्ग जन्म-मरण के अन्त को लावे, वह बात यहाँ है। आहाहा! जिसमें जन्म-मरण और जन्म-मरण के भाव जिसमें नहीं, ऐसे आत्मा में... आहाहा! 'हिसाइणियत्ती वा सरीरगुप्ति ति णिदिट्ठा।'

उनकी अपरिस्पंदमूर्ति ही ( अकम्पदशा ही ) निश्चयकायगुप्ति है। लो, भगवान



आत्मा निज ज्ञान और आनन्दस्वरूप में स्थिर हो, कँपे नहीं। अपरिस्पन्द अर्थात् पुण्य-पाप की कम्पन दशा जहाँ नहीं। ऐसी अपरिस्पन्दमूर्ति ही ( अकम्पदशा ही ) निश्चयकायगुप्ति है। उसे भगवान ( द्वारा ) शरीर की गुप्ति और कायगुप्ति कहा जाता है। अब, इसी प्रकार श्री तत्त्वानुशासन में ( श्लोक द्वारा ) कहा है कि — है न ऊपर श्लोक, १३७ पृष्ठ पर

उत्सृज्य कायकर्माणि भावं च भवकारणम् ।

स्वात्मावस्थानमव्यग्रं कायोत्सर्गः स उच्यते ॥

इसका अर्थ। १३७ पृष्ठ पर अर्थ है।

**श्लोकार्थ :** कायक्रियाओं को... यह निमित्त की बात ली है। जड़ की क्रिया। उसमें निमित्त-नैमित्त सम्बन्ध है न? इसलिए कायक्रिया नैमित्तिक और विकार निमित्त। कायक्रियाओं को तथा भव के कारणभूत ( विकारी ) भाव को... देखो! भव का कारण। पुण्य और पाप के विकल्प / राग, वह तो भव का कारण है। आहाहा! भगवान परमात्मा की भक्ति का भाव, वह शुभभाव, वह भव का कारण है। आहाहा! बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में राग, वह वीतरागमार्ग में नहीं हो सकता। होवे, उसे जाननेयोग्य आवे परन्तु आदरणीय है, ऐसा नहीं है। भाव होता अवश्य है। आहाहा!

दो बातें ली हैं। कायक्रियाओं को तथा भव के कारणभूत... पुण्य-पाप का विकल्प जो शुभ-अशुभराग, वह भव का कारण है। वह कायक्रिया निमित्त जड़ की, वह कहीं भव का कारण नहीं है, कारण यह है। आहाहा! छोड़कर,... उस विकारीभाव को ( छोड़कर। ) चाहे तो भगवान की भक्ति का विकल्प हो या दया-दान का हो, व्रत का हो, वह सब राग है। वह राग भव का कारण है। वे शोर मचाते हैं कि समकित्ती का पुण्य भव का कारण? अब सुन न, भाई! वहाँ राग है। आहाहा! गजब मार्ग, बापू! अभी ऐसी बात सुनना भी कठिन हो गयी है। बाहर की रूढ़ियाँ रह गयीं। सर्प गया और लकीरें रही, कहते हैं न? आहाहा!

कहते हैं, वे काय क्रियाएँ हैं, उनका लक्ष्य छोड़ दे और उनके कारणरूप जो भव का कारण ऐसे विकारीभाव, उन्हें छोड़कर अर्थात् उनका लक्ष्य छोड़कर अव्यग्ररूप से निज आत्मा में स्थित रहना,... आनन्दरूप से। पुण्य-पाप में व्यग्रता थी। शुभ-अशुभभाव है, वह तो व्यग्रता है, अस्थिरता है, कम्पन है, दोष है। आहाहा! अव्यग्ररूप से निज आत्मा

में... वापस ऐसा। भगवान का आत्मा माने, वह नहीं; वह तो पर है। आहाहा! निज आत्मा में स्थित रहना,... भगवान आत्मा आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय स्वभाव का सागर है। ऐसे निज आत्मा में अन्दर स्थित रहना, वह कायोत्सर्ग कहलाता है। आहाहा! उसका नाम धर्म कहो, उसका नाम कायोत्सर्ग कहो, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो। कहो, है या नहीं अन्दर सामने? पाठ सामने है। पाठ का तो अर्थ होता है। बनिये दीवाली में नामा मिलाते हैं या नहीं? बहियों में नहीं मिलाते? दशहरा आवे, तब मिलाते हैं या नहीं? भाई! तुझे कितना लेना है? उसमें 27835 निकलते हैं। तुझे कितने निकलते हैं, भाई? यहाँ तो तीन हजार निकलते हैं। इतना अधिक अन्तर कैसे होगा? मिलान करो। कोई रकम बाकी रह गयी। वहाँ बनिये मिलाते हैं। यहाँ मिलाने में समय नहीं मिलता।

**मुमुक्षु :** वहाँ लाभ दिखता है और यहाँ लाभ दिखाओ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल में भी वहाँ लाभ नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा... लाभ सवाया-बनिये लिखते हैं न? दरवाजे पर लिखते हैं। लक्ष्य लाभ अर्थात् आत्मा का लक्ष्य कर तो लाभ होगा, ऐसा है इसका अर्थ... आहाहा!

एक बार हमने कहा था न? पालेज में साथ में बहियाँ लिखी थीं, बहियों में नामा लिखते हैं न? लोटियावोरा। एक बड़ा गृहस्थ बड़ोदरा में। नामा साथ में लिखा। और माल लेने गये। मैं मुम्बई माल लेने गया था। यह तो (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष की बात है। उसमें वह लोटियावोरा सामने था। पचास हजार का कपड़ा जल गया। लिखकर सब दे, उसका जल गया। मुम्बई। वह सेठ रास्ते में मिला। कैसे हो सेठ? सब जल गया। नामा तो साथ में लिखा था। बहियाँ लिखकर हम वहाँ रहे। क्या कहलाता है? आतिशबाजी। आतिशबाजी करे। उस सेठिया की दुकान में सब साथ में नामा लिखने जाए, परन्तु साथ में नामा लिखा था न कहा उसमें? नहीं, भाई थे। पचास हजार का कपड़ा, हों! महिलाएँ मुश्किल से निकली। अग्नि कैसी लगी रात्रि को, बाहर से निकले, वह क्या कहलाता है कमरा न हो? दरवाजे में से बाहर निकलकर नीचे उतरे। नीचे धग.. धग.. धग.. परन्तु नामा लिखा था न? वह वहाँ क्या करता था? पाप का उदय आवे तो नामा भी पड़ा रहे। आहाहा! सुलग गया।

**मुमुक्षु :** कपड़े जल गये, उसमें पाप का उदय क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पचास हजार गये। हाय.. हाय.. बाहर में भिखारी हो गया। यह तो उस समय की बात है। (संवत्) १९६४-६५-६६ के वर्ष की बात है। उस समय में पचास हजार अर्थात् ? अभी तो तुम्हारे रुपये गिनती में कहाँ आते हैं। अभी के बीस लाख और पहले के एक लाख, इतना अधिक भाव बदल गया है न ?

**मुमुक्षु :** लोगों में भी बदल गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब बदल गया। लोगों का बदल गया, दाना का बदल गया, घी का बदल गया, पानी का बदल गया। सब बदल गया। आहाहा! उसमें क्या हुआ ? साथ में नामा लिखा था।

यहाँ तो कहते हैं कि वह तो पूर्व के पुण्य-पाप प्रमाण बाहर की क्रियाएँ होती हैं। वहाँ कहीं तेरे रखने से रहती नहीं। यह रखने से रहे ऐसा है, ऐसा कहता है। आत्मा में ठीक रहना। निज भगवान वस्तु है, पदार्थ है। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा स्वयं है। सत्शाश्वत् ज्ञान और आनन्द है, उसमें स्थित रहना, पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़कर स्थित रहना, इसका नाम भगवान, कायोत्सर्ग और शरीरगुप्ति और धर्म कहते हैं। आहाहा!



### श्लोक-९५

और ( इस ७० वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं ) —

( अनुष्टुप् )

अपरिस्पन्दरूपस्य परिस्पन्दात्मिका तनुः ।

व्यवहाराद्भवेन्मेऽतस्त्यजामि विकृतिं तनोः ॥९५॥

( वीरछन्द )

अपरिस्पन्द स्वरूप मुझे यह परिस्पन्दमय देह अहो ।  
है व्यवहार मात्र से यह तन अतः तजूँ तन विकृति को ॥

[ श्लोकार्थः— ] अपरिस्पन्दात्मक ऐसे मुझे, परिस्पन्दात्मक शरीर व्यवहार से है; इसलिए मैं शरीर की विकृति को छोड़ता हूँ।

श्लोक-१५ पर प्रवचन

और ( इस ७० वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं ) — स्वयं का श्लोक है। पद्मप्रभमलधारिदेव।

अपरिस्पन्दरूपस्य परिस्पन्दात्मिका तनुः।

व्यवहाराद्भवेन्मेऽतस्त्यजामि विकृतिं तनोः॥१५॥

श्लोकार्थः अरे! अपरिस्पन्दात्मक ऐसे मुझे,... स्वयं कहते हैं, मैं तो अपरिस्पन्द अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प में नहीं आऊँ, ऐसी मैं चीज़ हूँ। चैतन्यबिम्ब ध्रुवस्वरूप भगवान, अपरिस्पन्दात्मक स्थिर बिम्ब आत्मा है। आहाहा! कहो, समझ में आया? कहाँ गये? चेतनजी नहीं? पीछे से आये लगते हैं। अपरिस्पन्दात्मक ऐसे मुझे,... मैं तो अन्दर पुण्य-पाप के राग से भिन्न हूँ। यह पुण्य-पाप और शरीरादि सब परिस्पन्द, कम्पन है। मेरा निजस्वरूप अपरिस्पन्दक है। कम्पन नहीं, अस्थिरता नहीं, पुण्य-पाप का विकल्प नहीं। स्थिर बिम्ब शान्त आनन्दकन्द हूँ। आहाहा! ऐसे मुझे, परिस्पन्दात्मक शरीर व्यवहार से है;... ऐसा यहाँ पुण्य, पाप और शरीर वह तो व्यवहार से मुझे है, निश्चय से मुझमें है नहीं। पर्याय में निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। व्यवहार से अर्थात् है नहीं, उसे कहना।

मुमुक्षु : 'है' उसका अर्थ 'नहीं' करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; 'है' यह ? कहते हैं 'नहीं'। व्यवहार से कहलाता है कि नहीं। आहाहा!

तेरा शरीर तो अपरिस्पन्द है। ध्रुव, ध्रुव नित्यानन्द अविनाशी आदि-अन्तरहित तेरा सत्त्व, ऐसे मुझे यह परिस्पन्दक विकार और शरीर यह मुझे व्यवहार से कहने में आये हैं। परमार्थ से मुझमें है नहीं। आहाहा! गजब भाई! ऐसी क्रिया! इसलिए मैं शरीर की विकृति को छोड़ता हूँ। व्यवहार से परिस्पन्द है न? ऐसा। इसलिए उस व्यवहार को मैं छोड़ता हूँ,

ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान! मेरी चीज़ तो आनन्द का धाम, स्थिरबिम्ब है, उसमें रहकर **परिस्पन्दात्मक विकार-शरीर व्यवहार से है;**... कहने में (आता है), उसे मैं छोड़ता हूँ। इस शरीर की विकृति को छोड़ता हूँ। यह पुण्य-पाप का भाव सब शरीर की विकृति है। यह आत्मा का भाव नहीं है, लो, यह गुप्ति की व्याख्या की।

अब भगवान की व्याख्या करते हैं। अरिहन्त भगवान! णमो अरिहन्ताणं। ये अरिहन्त कैसे होते हैं, उनकी पहिचान कराते हैं। यह व्यवहार है न? परद्रव्य है न? पाँचों ही परमेष्ठी पर है। आत्मा के लिए पर है, इसलिए व्यवहार है। पंच परमेष्ठी पर लक्ष्य जाने से राग ही होता है, इसलिए यहाँ व्यवहार में उनका अधिकार डाला है। समझ में आया? परद्रव्य है न? निज भगवान स्वद्रव्य का आश्रय करने से, उसके अवलम्बन में जाने से इसे धर्म होता है। पर के आश्रय में जाने से धर्म नहीं होता, शुभभाव / पुण्य होता है।

**मुमुक्षु :** तो भी लोग जाते हैं न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जाएँ, न जाएँ; यहाँ निश्चय की बात है। वस्तु यह है। राग है, इसलिए गए बिना रहे नहीं। यहाँ तो वस्तु की स्थिति क्या है, यह कहते हैं। वहाँ जाकर धर्म मान लेता है न? धर्म कर आये। ऊपर जाकर नीचे उतरे, लो, जाओ। वह धर्म नहीं है। पाँच परमेष्ठी का आश्रय लेकर राग ही होता है, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य है न? वह कहाँ स्वद्रव्य है? आहाहा! वहाँ जाकर कहे, 'शिवपद हमको देजो रे महाराज' भगवान कहते हैं तेरा शिवपद तुझमें है; मेरे सामने देखकर नहीं मिलेगा। आहाहा! दुनिया से तो भारी कठिन काम है।

## गाथा-७१

घणघाडकम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुणसहिया ।  
 चोत्तिसअदिसयजुत्ता अरहंता एरिसा होंति ॥७१॥  
 घनघातिकर्मरहिताः केवलज्ञानादिपरमगुणसहिताः ।  
 चतुस्त्रिंशदतिशय-युक्ता अर्हन्त ईदृशा भवन्ति ॥७१॥

भगवतोऽर्हत्परमेश्वरस्य स्वरूपाख्यानमेतत् । आत्मगुणघातकानि घातिकर्माणि घन-  
 रूपाणि सान्द्रीभूतात्मकानि ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहनीयानि तैर्विरहितास्तथोक्ताः; प्रागुप्त-  
 घातिचतुष्कप्रध्वन्सनासादितत्रैलोक्यप्रक्षोभहेतुभूतसकलविमलकेवलज्ञानकेवलदर्शन-  
 केवलशक्तिकेवलसुखसहिताश्च; निःस्वेदनिर्मलादिचतुस्त्रिंशदतिशयगुणनिलयाः; ईदृशा भवन्ति  
 भगवन्तोऽर्हन्त इति ।

चौंतीस अतिशययुक्त, अरु घनघाति कर्म विमुक्त है ।  
 अर्हत श्री कैवल्यज्ञानादिक परमगुण युक्त हैं ॥७१॥

गाथार्थ :—[ घनघातिकर्मरहिताः ] घनघातिकर्मरहित, [ केवलज्ञानादिपरम-  
 गुणसहिताः ] केवलज्ञानादि परम गुणों सहित और [ चतुस्त्रिंशदतिशययुक्ताः ] चौंतीस  
 अतिशय संयुक्त—[ ईदृशाः ] ऐसे, [ अर्हन्तः ] अरहन्त [ भवन्ति ] होते हैं ।

टीका :— यह, भगवान अरहन्त परमेश्वर के स्वरूप का कथन है ।

[ भगवन्त अरहन्त कैसे होते हैं ? ] ( १ ) जो आत्मगुणों के घातक घातिकर्म हैं  
 और जो घन अर्थात् गाढ़ हैं—ऐसे जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय  
 कर्म, उनसे रहित वर्णन किये गये; ( २ ) जो पूर्व में बोये गये चार घातिकर्मों के नाश  
 से प्राप्त होते हैं ऐसे, तीन लोक को प्रक्षोभ<sup>१</sup> के हेतुभूत सकलविमल ( सर्वथा निर्मल )

१. प्रक्षोभ का अर्थ ८५ वें पृष्ठ की टिप्पणी में देखें ।

केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलशक्ति ( वीर्य, बल ) और केवलसुख सहित; तथा ( ३ ) स्वेदरहित, मलरहित इत्यादि चौंतीस अतिशय गुणों के निवासस्थानरूप—ऐसे भगवन्त अरहन्त होते हैं।

---

गाथा-७१ पर प्रवचन

---

७१ गाथा है

घणघाड़कम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुणसहिया ।

चोत्तिसअदिसयजुत्ता अरहंता एरिसा होंति ॥७१॥

अरिहन्त भगवान ऐसे होते हैं ? अभी अरिहन्त भगवान कैसे होते हैं, उसकी खबर नहीं होती। अरिहन्त भगवान हैं, अरिहन्त भगवान हैं। आहाहा ! नीचे इसका हरिगीत है।

चौंतीस अतिशययुक्त, अरु घनघाति कर्म विमुक्त है।

अर्हत श्री कैवल्यज्ञानादिक परमगुण युक्त हैं ॥७१॥

इसकी टीका है न ? टीका : यह, भगवान अरहन्त परमेश्वर के स्वरूप का कथन है। टीका है ? यह, भगवान... णमो अरिहन्ताणं। वे अरिहन्त कैसे होते हैं, उनकी पहिचान देते हैं। इस ओर १३८ पृष्ठ पर।

[ भगवन्त अरहन्त कैसे होते हैं ? ] ( १ ) जो आत्मगुणों के घातक घातिकर्म हैं और जो घन अर्थात् गाढ़ हैं—ऐसे जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय कर्म, उनसे रहित वर्णन किये गये;... अरिहन्त भगवान तो चार घातिकर्मों का नाश किया है। समझ में आया ? भगवान महावीर आदि जब अरिहन्त पद में विराजमान थे, तब उन्हें चार घातिकर्मों का नाश हुआ था। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। अभी तो भगवान सिद्ध हैं। तीर्थकर अभी तो सिद्ध हैं। वे तो अशरीरी हैं। अभी अरिहन्त नहीं हैं। अभी महाविदेह में अरिहन्त सीमन्धर भगवान हैं। चौबीस तीर्थकर तो अभी णमो सिद्धाणं में शामिल हो गये हैं, वे तो सिद्ध हो गये। वे जब अरिहन्त थे, तब यहाँ थे। अभी अरिहन्त महाविदेह में विराजते हैं। बीस विहरमान तीर्थकर, सीमन्धर भगवान ( आदि ) विद्यमान तीर्थकर वे अभी अरिहन्तपद में हैं और तीर्थकर ( महावीरस्वामी आदि ) अभी

सिद्धपद में हैं। यह कहते हैं, **आत्मगुणों के घातक...** अर्थात् निमित्त घातक। घातिकर्म जो घन अर्थात् गाढ हैं। ऐसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय कर्म से रहित कहने में आये हैं। भगवान अरिहन्त चार कर्मों से रहित हो गये हैं।

( २ ) जो पूर्व में बोये गये चार घातिकर्मों के नाश से प्राप्त होते हैं ऐसे, **तीन लोक को प्रक्षोभ के हेतुभूत...** आनन्द का कारण, ऐसा कहते हैं। भगवान अरिहन्त को जब केवलज्ञान होता है, तब तीन लोक में जरा साता होती है। भगवान जन्मे, केवलज्ञान प्राप्त करे, तब तीन लोक में-नारकी को भी जरा साता होती है। **तीन लोक को प्रक्षोभ के हेतुभूत...** निमित्तभूत। देखो! निमित्तभूत-हेतुभूत कहा न? **सकलविमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान,...** परमात्मा को एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा केवलज्ञान होता है। आहाहा! एक 'क' के असंख्यातवें भाग में। 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसके एक समय में तीन काल-तीन लोक भगवान जानते हैं। गत अनन्त काल की अनन्त पर्यायें, वर्तमान और भविष्य, सभी पर्यायोंसहित द्रव्य को एक समय में भगवान जानते हैं। हुआ, होता है और होगा - सब भगवान जानते हैं। भगवान के ज्ञान से कुछ अनजाना नहीं है। आहाहा! जगत में ऐसा ज्ञान होता है, वह भी अभी सत्ता का स्वीकार करना। समझकर, हों! अरिहन्त भगवान को केवलज्ञान होता है। एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने। जिसे केवलज्ञान होने पर जगत के तीन लोक में जरा क्षोभ हो जाता है। क्षोभ अर्थात् सुख। खलबलाहट हो जाती है, अहो! कहीं कोई परमात्मा केवलज्ञान प्राप्त हुए हैं, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

**सकलविमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान,...** भगवान को होता है। आहाहा! **केवलदर्शन,...** होता है। केवलवीर्य। शक्ति अर्थात् वीर्य। भगवान को अनन्त वीर्य प्रगट हुआ होता है **और केवलसुख...** अकेले आनन्दसहित भगवान हैं। भगवान को तो वहाँ कोई पैसा नहीं, मकान नहीं, स्त्री नहीं, खाना नहीं, आहार-पानी नहीं, कुर्सी-टेबल नहीं। यह सब बैठते हैं न? बढ़िया कुर्सी पर खाने बैठें। यहाँ कपड़ा लटकता हो। यह सब वहाँ नहीं है और कहते हैं कि अनन्त सुख है। बाहर में कहाँ धूल में सुख था। बाहर के लक्ष्य में जाए, इतनी तो आकुलता और राग है। भगवान तो अन्तर आनन्द की दशा शक्तिरूप है, उसे प्रगट की है। आहाहा! सुखी तो भगवान केवली हैं। पैसेवाले, बादशाह और सेठ



सुखी नहीं, ऐसा कहते हैं। जिसे पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ है, (वह सुखी है)। आहाहा!

अरे! ऐसे अस्तित्व की सत्ता का स्वीकार करने जाए, तब वह महासत्ता इतनी एक समय की केवलज्ञान आदि है। इसे द्रव्य पर दृष्टि जाए, तब उसका स्वीकार होता है। आहाहा! गजब बात, भाई! **केवलसुख सहित**;... भगवान हैं। आहाहा! ऐसा कहकर (कहते हैं), उन्हें आहार-पानी का दुःख नहीं अब। या आहार-पानी लेना है? अरिहन्त की बात है न? शरीर सहित हैं उनकी (बात है न)। अरिहन्त की बात है न? शरीर है, तो भी आहार-पानी का दुःख नहीं है। उन्हें आहार-पानी नहीं होता। उन्हें अन्दर में अनन्त आनन्द है। उस सहित है। मुख्य चार शक्ति से सहित है। अनन्त गुण का परिणमन है परन्तु ये चार मुख्य हैं।

**स्वेदरहित**,... हैं। भगवान को पसीना नहीं होता। अरिहन्त भगवान को पसीना नहीं होता। स्वेद अर्थात् पसीना। **मलरहित**... है। उन्हें दिशा—मल-मूत्र नहीं होता। उन्हें खाने का आहार नहीं है। **इत्यादि चौंतीस अतिशय गुणों के निवासस्थानरूप**... यह व्यवहार डाला है, वह (अनन्त चतुष्टय) निश्चय गुण हैं। पुण्यप्रकृति में ऐसा भाव उन्हें होता है।

**चौंतीस अतिशय गुणों के निवासस्थानरूप—ऐसे भगवन्त अरिहन्त होते हैं।** वास्तविक अरिहन्त का स्वरूप द्रव्य-गुण-पर्याय से जाने तो उसे आत्मा के साथ मिलान का प्रसंग आवे। इसकी अभी कहाँ दरकार है? भगवान है... भगवान है... बस हो गया। **चौंतीस अतिशय गुणों के निवासस्थानरूप—ऐसे भगवन्त अरिहन्त होते हैं।** ऐसे अरिहन्त भगवान होते हैं। साधारण प्राणी अपने को अरिहन्त मनावे, आहार हो, पानी हो, शरीर में रोग हो और अरिहन्त हैं, ऐसा नहीं। ऐसा बताते हैं। समझ में आया?

श्लोक-९६

अब ७१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं —

( मालिनी )

जयति विदित-गात्रः स्मेर-नीरेज-नेत्रः,  
सुकृतनिलयगोत्रः पण्डिताम्भोजमित्रः ।  
मुनि-जन-वन-चैत्रः कर्म-वाहिन्यमित्रः,  
सकल-हित-चरित्रः श्रीसुसीमा-सुपुत्रः ॥९६॥

( हरिगीतिका )

प्रख्यात तन संयुक्त, अम्बुजवत् प्रफुल्लित नेत्र हैं ।  
पुण्य का घर गोत्र है पण्डित कमल को सूर्य हैं ॥  
मुनिजन वनों को हैं वसन्तरु कर्मदल के शत्रु हैं ।  
सर्व हितकारी सुसीमा मात-सुत जयवंत हैं ॥

[ श्लोकार्थः — ] प्रख्यात ( अर्थात् परमौदारिक ) जिनका शरीर है, प्रफुल्लित कमल जैसे जिनके नेत्र हैं, पुण्य का निवासस्थान ( अर्थात् तीर्थङ्करपद ) जिनका गोत्र है, पण्डितरूपी कमलों को ( विकसित करने के लिये ) जो सूर्य हैं, मुनिजनरूपी वन को जो चैत्र हैं ( अर्थात् मुनिजनरूपी वन को खिलाने में जो वसन्तऋतु समान हैं ), कर्म की सेना के जो शत्रु हैं और सर्व को हितरूप जिनका चरित्र है, वे श्री सुसीमा माता के सुपुत्र ( श्री पद्मप्रभ तीर्थङ्कर ) जयवन्त हैं ।

श्लोक-९६ पर प्रवचन

अब ७१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं— पाँच श्लोक । ओहोहो !

जयति विदित-गात्रः स्मेर-नीरेज-नेत्रः,  
सुकृतनिलयगोत्रः पण्डिताम्भोजमित्रः ।

मुनि-जन-वन-चैत्रः कर्म-वाहिन्यमित्रः,  
सकल-हित-चरित्रः श्रीसुसीमा-सुपुत्रः ॥९६॥

ओहोहो! त्रः सब त्रः एक-एक पद में।

पद्मप्रभ भगवान को स्मरण किया है। स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव हैं न? टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारि मुनि हैं। इसलिए पद्मप्रभु को स्मरण किया है। यह टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारि मुनि, दिगम्बर वनवासी सन्त थे। आचार्य नहीं थे, मुनि थे, तो अपने नाम के भगवान जो पद्मप्रभ है, उनको स्मरण करके कहते हैं। भगवान कैसे थे? अरिहन्त पद में थे तब। अभी तो सिद्ध हो गये हैं। चौबीस तीर्थकर अभी तो सिद्ध हो गये। अभी शरीर नहीं है, आठ कर्म का नाश करके सिद्ध हो गये। यह तो थे, तब की बात है।

प्रख्यात ( अर्थात् परमौदारिक ) जिनका शरीर है,... जिनका परमौदारिक शरीर है। भगवान अरिहन्त हों, केवलज्ञान हो, तब उनका शरीर स्फटिक जैसा परमौदारिक रजकण हो जाते हैं। उन्हें रोग नहीं होता, आहार नहीं होता, पानी नहीं होता—ऐसा शरीर ही स्फटिक जैसा हो जाता है। आहाहा! जिसमें नजर डालने से... भामण्डल आदि साथ में होते हैं न! सप्त भव का ज्ञान हो जाता है। जिसे भव हो उसे। नहीं हो, उसके भूत के तीन और वर्तमान। ऐसा परमौदारिक शरीर भगवान को होता है। अरिहन्त को ऐसा शरीर होता है। लो, यह तो एक पद्मप्रभ का नाम लिखा है, परन्तु सब अरिहन्तों को ऐसा ही होता है।

प्रफुल्लित कमल जैसे जिनके नेत्र हैं,... आहाहा! तीर्थकर पुण्यवन्त होते हैं। कमल प्रस्फुटित हो लम्बे सेड हो, ऐसी आँख होती है। साधारण प्राणी की अपेक्षा तीर्थकर का पुण्य तो सर्वोत्कृष्ट है न? इसलिए उनकी आँख भी प्रफुल्लित कमल जैसे जिनके नेत्र... खिला हुआ कमल हो, ऐसी उनकी आँख होती है। आँख से उन्हें कुछ देखना नहीं, हों! यह तो शरीर ऐसा होता है, ऐसा बताते हैं। वे तो केवलज्ञानी हैं। केवलज्ञान से तीन काल और तीन लोक को देखते हैं। आहाहा! पुण्य का निवासस्थान... है। ऐसा गोत्र है, लो। तीर्थकर गोत्र है न? पुण्य का निवासस्थान है न। उनके पास सर्वोत्कृष्ट पुण्य का फल है।

मुमुक्षु : पुण्य फला अरिहन्ता

पुण्य गुरुदेवश्री : वह यह पुण्य फला अरिहन्ता।

पण्डितरूपी कमलों को ( विकसित करने के लिये ) जो सूर्य हैं,... कैसे हैं तीर्थंकर भगवान अरिहन्त परमात्मा ? जो कोई पण्डित चतुर और समझदार जीव होते हैं, ऐसे कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य हैं। मूढ़ को क्या करे, कहते हैं। जिसमें समझने की योग्यता और पात्रता है, ऐसे पण्डितों को, **पण्डितरूपी कमलों को ( विकसित करने के लिये ) जो सूर्य हैं,... सूर्य... परमात्मा हैं।** कहो, समझ में आया ? जैसे यह प्रातःकाल कमल खिलता है न ? सूर्य के निमित्त से जैसे कमल खिलता है। वह कमल खिलता है न ? लकड़ियाँ खिलेंगी ? इसी प्रकार जो पात्र जीव होते हैं, ऐसे पण्डितों को, पण्डितरूपी कमलों को प्रगट होने में वे सूर्यसमान हैं।

**मुनिजनरूपी वन को जो चैत्र हैं...** बसन्त ऋतु। चैत्र महीने में बसन्त ऋतु होती है न ? सब फूल खिल जाते हैं। पंच वर्णा फूल खिल जाते हैं। भगवान के काल में ऐसे जीव खिल उठते हैं। ( **मुनिजनरूपी वन को खिलाने में...** ) सन्त, लाखों मुनि होते हैं, उनके खिलने में भगवान ( **बसन्तऋतु समान हैं** ) आहाहा ! **कर्म की सेना के जो शत्रु हैं...** अर्थात् उन्हें मार डाला है। बाकी चार मुर्दे रहे हैं। घाति को जलाया है और चार अघाति ( रह गये हैं )। भगवान को चार कर्म रह गये हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र। सिद्ध भगवान आठ कर्मरहित हैं। अरिहन्त को चार गये और चार बाकी हैं।

**और सर्व को हितरूप जिनका चरित्र है...** आहाहा ! चरित्र ही ऐसा है, कहते हैं। उनका चरित्र। **चरित्र है...** ऐसा शब्द है न **सकल-हित-चरित्र**: उनका सब वर्तन ही पूरा, सरल जीव को हितकारी है। **वे श्री सुसीमा माता के सुपुत्र...** सुसीमा माता के सुपुत्र ( **श्री पद्मप्रभ तीर्थङ्कर** ) जयवन्त हैं। कहो, अभी तो पद्मप्रभ मोक्ष में पधारे हैं, परन्तु पूर्व के अरिहन्त पद में थे, उसे याद किया है। जयवन्त वर्तो। आहाहा ! उनका कहा हुआ भाव, हमारे में जयवन्त वर्तता है। भगवान भी जयवन्त वर्तते हैं, ऐसा कहकर मांगलिक किया है।

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव ! )